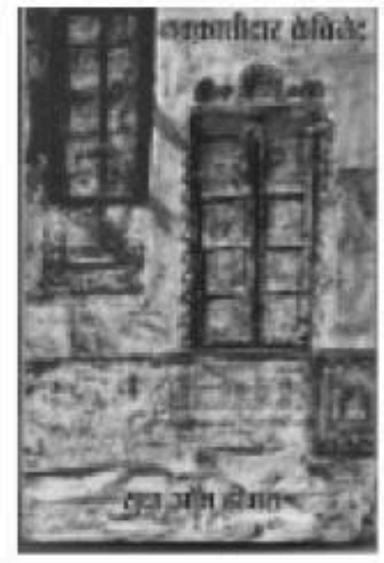

प्रेम जनमेजय

सूर्यबाला और सुधा ओम ढींगरा की कृतियां

आजादी के बाद हमारे समय में अनेक महत्वपूर्ण काम हुए हैं। हममे बहुत कमियां है और बहुत सुधार की आवश्यकता है। हम अनेक क्षेत्रों में आजाद हुए हैं पर अनेक क्षेत्रों में आजादी मिलना शेष है। माना कि हमारी न्याय व्यवस्था शिथिल है और इसमें अक्सर न्याय मिलता नहीं उसे खरीदना पड़ता है। फिर भी यदि सामाजिक न्याय की बात करें तो आजादी के बाद वंचितों को न्याय मिलने की जो प्रक्रिया आरंभ हुई है वह गति पकड़ रही है। औरत मुहावरे में ही नहीं जीवन के यथार्थ में भी घर की चारदिवारी से बाहर की दुनिया में अपनी सक्रिय भूमिका निभाने लगी है। न न न मैं किसी महिला आंदोलन केंद्रित विचारवान पुस्तक की समीक्षा की भूमिका नहीं बना रहा हूं अपितु अपनी दो महिला साहित्यकार मित्र की नई कृतियों पर अपने विचार की भूमिका बना रहा हूं। सूर्यबाला और सुधा ओम ढींगरा के न केवल साहित्य से परिचित हूं अपितु उनके मैत्रीपूर्ण आत्मीय व्यवहार का कृपापात्र भी हूं। बहुत अच्छा रहता है कि जिसे आप पढ़ें, उसे व्यक्ति के रूप में भी जाने। इस जानने के कारण कुछ सीमाएं खिंच सकती हैं और आपको सीमित कर सकती हैं पर रचनाकार को और अधिक जानने का अवसर भी मिलता है। मेरे लिए, मेरे साहित्य की दुनिया मेरा एक विस्तृत होता परिवार है। इस परिवार में यदि कोई अपनी कृति संग आत्मीय होता है तो उपलब्धि-सी होती है।

मैं बात कर रहा हूं सूर्यबाला और सुधा ओम ढींगरा की। इन दोनों की कृतियां मैं वैसे भी पढ़ता, पर उनके आत्मीय आग्रह ने न केवल मुझे जल्दी पढ़ने पर विवश किया अपितु 'कुछ' लिखने को भी।

'यह व्यंग्य को पंथ' भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित सूर्यबाला का नए पुरानी व्यंग्य रचनाओं का संकलन है। हां इसकी भूमिका नई-पुरानी नहीं है, नई है। वे लिखती हैं- मैंने कभी अपने होशोहवास में व्यंग्य लिखने या व्यंग्यकार बनने की कोशिश नहीं कि लेकिन न जाने कैसे थोड़ी न थोड़ी होती चली गई। अब पीछे मुढ़कर देखती हूं तो लगता है, थी जरूर बचपन से ही, बल्कि जन्मजात. . .(जो कि एक व्यंग्यकार होता है) जिंदगी से खाद-पानी मिली तो व्यंग्य की भी फसल लहलहा उठी, ढाबा खुल गया. . .वरना साहित्य नाम की दुनिया तो गुरुगंभीरता से इतनी ठुंसी-ठुंसाई होती है कि उसमे हास्य-व्यंग्य के लिए रास्ता निकालना आसान नहीं होता, वह भी एक स्त्री के लिए।' सूर्यबाला ने अपने इस एक वक्तव्य में अनेक मुद्दों पर अपनी बात कह दी हैं उनके लिए व्यंग्य क्यों जरूरी है, हिंदी व्यंग्य को क्या समझती हैं, हिंदी व्यंग्य उनको क्या समझता है, हिंदी व्यंग्य की स्थिति क्या है आदि आदि। मैंने कभी लिखा था- यदि शांति मेहरोत्रा, सूर्यबाला, अलका पाठक जैसी लेखिकाएं व्यंग्य नहीं लिखतीं तो व्यंग्य-लेखन को पुरुषोचित लेखन मानने से आलोचकों को कोई नहीं रोक सकता था और हिंदी व्यंग्य नारी-विमर्श-विहीन होने का अभिशाप झेलता।' सूर्यबाला इस श्राप से बचाने वाली महत्वपूर्ण व्यंग्यकार हैं क्योंकि प्रतिष्ठित कथाकार होने के बावजूद वे व्यंग्यकार होने से शर्मिंदा नहीं हैं। वरना हमारे वरिष्ठ व्यंग्यकार ने तो निरंतर व्यंग्य लिखने और व्यंग्य मसीहा बनने के बाद घोषणा कर दी थी कि उन्होंने निबंध, लघु कहानी आदि लिखी है। (व्यंग्य नहीं लिखे।)

सूर्यबाला के लेखन से मैं वर्षों से परिचित हूं, धर्मयुग के समय से। 1973 और उसके लगभग दस साल बाद तक का वो धर्मयुगीय समय है जिसमें मेरी पीढ़ी के अनेक लेखकों को भारती जी ने न केवल खूब छापा अपितु साहित्य जगत में स्थापित कर दिया। सूर्यबाला एक ऐसी ही रचनाकार हैं। 'एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम', 'रेस', 'मेरे संधिपत्र' जैसी उनकी अनेक कृतियों ने धीरे-धीरे मुझे उनका प्रशंसक बना दिया। 1989 में उनका पहला व्यंग्य संकलन आया तो उन्होंने मुझे भेजा और उसके पहले पृष्ठ के आरंभ में लिखा सम्मति एवं समीक्षार्थ तथा मध्य में लिखा- भाई प्रेम जनमेजय को शुभकामनाओं सहित। मुझे याद है कि मैंने उनका यह संकलन एक ही सिटिंग में किसी रोचक उपन्यास की तरह पढ़ लिया था। मुझे सूर्यबाला की दो बातों ने विशेष रूप से प्रभावित किया, पहली तो यह कि वे हास्य या व्यंग्य को जबरदस्ती रचना में इंजेक्ट नहीं करती हैं और दूसरी यह कि वह अपने और पाठक के बीच बहुत कम दूरी बनाकर चलती हैं। ऐसा लगता है कि लेखिका आपके पास बैठी आपको रचना सुना रही है। वे न तो चलते फैशन की विषयों की वासनाओं में फंसती हैं और न ही किसी अपने किसी अग्रज की कार्बन कॉपी बनने में विश्वास करती हैं। आज भी मुझे उनकी यह दोनों विशेषताएं प्रभावित करती हैं। उनके अंदर एक सहज करुणा विद्यमान् है जो रचना के माध्यम बेहतर मानवीय समाज के लिए अभिव्यक्त होती है। मेरी दृष्टि में उनका कथाकार रूप उनके व्यंग्यकार रूप पर हावी रहता है। यही कारण हे कि वे अपनी बात कथा, चरित्र एवं सवांदों के माध्यम से कहती हैं।

'यह व्यंग्य को पंथ' की अधिकांश रचनाएं मैं संकलन से पूर्व पढ़ चुका हूं। मेरी

प्रिय रचनाकार हैं अत: वे उनकी रचना पर नजर पढ़ते ही पढ़ने का मन होता है। अजगर करे न चाकरी, जूते चिढ़ गए हैं, भगवान ने कहा था आदि अनेक रचनाएं हैं जिन्हें पुन: पढ़कर भी ताजगी मिलती है। 'जूते चिढ़ गए हैं' जैसी रचना का पात्र जूता है। व्यंग्य रचना का सृजन करते समय उनका रचनकार जैसे एक अलग मूड़ में आ जाता है अथवा यह कहूं कि उनका रचनाकार जब अलग मूड़ की रचना का सृजन करने लगता है तो फैंट्सी आदि तत्वों के साथ अपने हथियार पैने कर मैदान में उतरता है। ऐसे में वे सीधे अपनी बात कम कहती हैं किसी अन्य अर्थ को अभिव्यक्त करने के लिए मासूम से लगने वाले सार्थक शब्दों को बुनती हैं। एक रहस्य-सा इस बुनने में भी दिखेगा जो जल्दी खुल भी जाता है। जैसे उनका यह वाक्य- अचानक ही टूट गया था, दिल की तरह . . .लेकिन दिल नहीं, मेरा दांत।' कथा शिल्प में सिहस्त होने के कारण उनकी व्यंग्य रचनाओं में एक ऐसा प्रवाह है जो आदि से अंत तक पाठक को बांधने की क्षमता रखता है। व्यंग्य लिखना उनके लिए व्यंग्य लिखने के लिए व्यंग्य लिखने जैसा नहीं है। एक सहज अभिव्यक्ति है। उनके व्यंग्य चिंतन एवं रचनात्मकता से युक्त होते हैं। व्यंग्य करने की उनमें हड़बड़ी दृष्टिगत नहीं होती है। वे सहज भाव से अपनी व्यंग्य प्रतिभा का प्रयोग करती हैं।

अब बात करता हूं सुधा ओम ढींगरा के पहले उपन्यास 'नक़्क़ाशीदार केबिनेट' की। जब भी अपने सहयात्री मित्र रचनाकार का उपन्यास देखता हूं, पढ़ता हूं तो एक हीन भावना से ग्रस्त हो जाता हूं। मैं आजतक कोई व्यंग्य उपन्यास तो क्या कोई बड़ी रचना नहीं लिख पाया। दूसरों को करते देखूंगा तो ईर्ष्या तो होगी ही। वैसे भी अपनी सक्रिय उर्जावान महिला शक्ति से अनेक ऐसे काम करती रहती है जिसे देख उनकी सक्रियता ये ईर्ष्या होने लगे। आपस में प्रतियोगिता बुहत अच्छी बात है और यह आपको प्रेरित भी करती है पर यह कैसी प्रतियोगिता जो आपकी अक्षमता को रेखांकित करे। पर जब कृति पढ़ता हूं, मित्र की रचना शक्ति से प्रभावित होता हूं, कृति के अच्छेपन पर मुग्ध होता हूं तो सभी नकारात्मक भाव कफूर हो जाते हैं और जो अपनी कृति का सुख मिलता है वैसे ही सुख मित्र की कृति को पढ़कर मिलता है।

सुधा ओम ढींगरा पहले भारत के जालंधर शहर में रहा करती थीं और आजकल सपरिवार अमेरिका में रहती हैं। हिंदी आलोचना में बहुत जल्दी खांचे तैयार कर लिए जाते हैं। हैं। किसी खाने में नारी विमर्श फिट है, किसी में दलित साहित्य और किसी में प्रवासी साहित्य। भारत में रहने वाला लेखक विदेश में जाते ही प्रवासी रचनाकार कैसे हो जाता है? जो रचनाएं उसने भारत में रची होती हैं उनपर भी प्रवासी साहित्य का बिल्ला लग जाता है। रचनाकार के द्वारा रचित साहित्य तो वही है, विदेश जाते ही क्या उसका धर्म परिवर्तन हो जाता है? दिक्कत यह हे कि हम अपनी सुविधा के लिए उसकी भारतीय रचनाओं को भी प्रवासी दृष्टि से देखने लगते हैं। सुधा ओम ढींगरा भी इसी दुराग्रह का शिकार रही हैं। हम रचना पर नहीं रचनाकार पर बात करने लगते हैं। साहित्यकार अपने विदेश प्रवास के कारण प्रवासी साहित्यकार नहीं होता है अपितु रचना के कथ्य और उसके ट्रीटमेंट के कारण होता है। आप एक भिन्न संस्कृति में जाते हैं और स्वयं को मिसफिट पाते हैं, एक अलग परिवेश में आपकी प्राथमिकताएं बदल जाती हैं, आपके संबंधों में आमूल चूल परिवर्तन आ जाता है। यदि आप उसका बयान करते हैं जो भारत की दुनिया से भिन्न एक अलग सोच और परिवेश को अभिव्यक्त करता है और हमारी सांस्कृतिक जिज्ञासाओं को बढ़ाता है तो आप अपने द्वंद्व को अलग तरह से रेखांकित कर रहे हैं। यही विशिष्ट आपके प्रवासी मन को अलग शब्द अर्थ और विचार देती है। यदि उसी परिस्थिति में आप अपने देश में भिन्न हो जाते हैं तो आप अलग पहचान के हैं। सुधा ओम ढींगरा की मेरी दृष्टि में ऐसी ही अलग पहचान है।

उनका उपन्यास ने 'नक़्क़ाशीदार केबिनेट' आंरभ में जिस टॉरनेडो का सजीव वर्णन किया है उससे साक्षात्कार न होने के बावजूद एक मन भयभीत हो उठता है। पर हरीकेन के साथ टॉरनेडो के पूरी शक्ति के साथ आक्रमण के लिए बढ़ते हुए कदमों में लेखिका एक अलग कोण ढूंढ़ती है। वह लिखती है- प्रभंजन और चक्रवात स्वयं शोर मचा रहे थे। दर्दनाक और पीड़ा से लिप्त स्वर सुनकर हैरानी हुई। ऐसा महसूस हुआ जैसे वरुण और पवन का चक्रवात सृष्टि को नष्ट करने से पहले स्वयं रो रहा था, बिलख रहा था, क्रंदन कर रहा था। प्रकृति की पीड़ा देकर लगा था, मानव प्रकृति से अधिक क्रूर प्राणी है वरन् सैंकड़ों बच्चों को मारने के बाद, बम्ब बलास्ट के बाद, कत्लेआम के बाद किसी आतंकी ग्रुप को कोई प्रतिनिधि कैसे कह सकता है! यह घृणित अपराध हमने किया है। प्रकृति मनुष्य से अधिक संवेदनशील है। मैंने उसे तबाही लाने से पहले तड़पते देखा।'' यह लेखिका की गजब दृष्टि है। इस सोच पे कौन न मर जाए खुदा। हमने भारत में हल्के तूफान झेले हैं पर अमेरिकी और कैरिबियन क्षेत्र में इनका सीजन होता है। मैंने त्रिनिदाद में रहते हुए इस भय को भोगा है जिसे भारत में रहते हुए कभी नहीं भोगा। वे अपने पात्रों के माध्यम से दोनों संस्कृतियों की तुलना करती हैं। ऐसे में आपको समझ आ जाता है कि उन्होंने अमेरिका संस्कृति की कितनी नब्ज टटोली है। उनके पात्र इस विषय पर अंत तक लंबी बहस करते हैं। लेखिका उनके माध्यम से सवाल करती है।

मैं सार्थक, सम्पदा, पारुल, सुक्खी आदि की कथा नहीं कह रहा हूं। समीक्षा की यह एक 'बेहतरीन' शैली है कि आप अपन बात की जगह पूरी कथा दे दें। मैं आपके सामने लेखिका की सोच और उसका ट्रीटमेंट दे रहा हूं। कथारस आप उपन्यास पढकर प्राप्त करें।

सुधा ओम ढींगरा के उपन्यास की भाषा और शैली है पर औपन्यासिक परिपक्वता अभ्यास देगा। एक कथाकार के रूप मैं उन्हें अभ्यास है पर उपन्यास एक अलग तरह का अनुशासन चाहता है जो समय के साथ आ ही जाती है। चाहूंगा कि वे दूसरा उपन्यास भी शीघ्र लिखें और इसलिए नहीं लिख रहा हूं कि गजब लिखा सुधा जी।

'यह व्यंग्य को पंथ'
लेखिका : सूर्यबाला
प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली।
मूल्य : 200 रुपए

नक़्क़ाशीदार केबिनेट
लेखिका : सुधाा ओम ढींगरा
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर
मूल्य : 150 रुपए